राजनीति में मध्यांतर (तीन)

सूफीवाद की सार्थकता और प्रासंगिकता

प्रेम सिंह

(1)

मानव सभ्यता के साथ किसी न किसी रूप में धर्म जुड़ा रहा है। आधुनिक काल से पूर्व युगों में सृष्टि की रचना एवं संचालन की परम-सत्ता अथवा परम-स्रोत के प्रति जिज्ञासा और उसे प्राप्त करने का चिंतन अधिकांशत: धार्मिक दायरे में होता रहा है. आधुनिक काल में विज्ञान-सम्मत आधुनिक-बोध के बावजूद धर्म की दुर्निवार उपस्थिति बनी हुई है। हालांकि पूर्व युगों के मुकाबले आधुनिक काल में धर्म केवल पिष्ट-पेषण का विषय रह गया है। पिष्ट-पेषण को पूंजीवादी ताम-झाम के साथ 'इवेंट' बना कर पेश करने की प्रतिस्पर्धा धर्म के रूप को और बिगाड़ देती है। धर्म झगड़े का कारण पहले भी रहा है, लेकिन उसमें रचनात्मकता के आयाम भी फूटते रहे हैं। आज वह केवल झगड़े का कारण बनता है। आधुनिक बुद्धि धर्म के साथ प्राय: सार्थक संवाद नहीं बना पाती। ऐसा हो, इसका प्रयास भी अब होता नज़र नहीं आता।

धर्म जीवन के लिए है या जीवन धर्म के लिए है - यह सवाल आस्तिक और नास्तिक दोनों के लिए उलझन भरा है। सवाल और उलझ जाता है जब यह पूछा जाए कि इनमें कौन-सी स्थिति मानव-जीवन के लिए सही मानी जाएगी। ये दोनों स्थितियाँ परस्पर व्याप्त (ओवरलैप) भी होती हों, तब भी सवाल बना रह जाता है। इस सवाल को लेकर यहां तात्विक विवेचन करने का विचार नहीं है। दोनों स्थितियों के बारे में एक व्यावहारिक अवलोकन (ऑब्जर्वेशन) रखने का प्रयास है। सभ्यताओं के अनुभव से इस सवाल का कुछ हद तक जवाब मिलता है। जीवन जब धर्म के लिए होता है तो उस स्थिति में पाखण्ड, अंधविश्वास और कट्टरता की संभावना हमेशा बनी रहती है। जीवन जीने का नाम है। यानी वह एक प्रक्रिया है। जीवन को धर्म के लिए मानने से जीवन जीने के क्रम में पाखण्ड पैदा होना अवश्यम्भावी है। पाखण्ड का सतत निर्वाह अंधविश्वास पैदा कर देता है, जिसे आस्था कह कर और पुष्ट किया जाता है। अंधविश्वास मूर्खता को ही नहीं, कट्टरता/जड़ता को भी जन्म दे सकता है। मानव-जीवन हर दौर में बहु-स्तरीय सत्ता समीकरणों से घिरा होता है। सत्ता समीकरण होते हैं तो हर स्तर पर सत्ता के नियामक/नियंत्रक भी होते हैं। सत्ता का स्वररूप अलग-अलग युगों में अलग-अलग हो सकता है । जैसे धर्म की सत्ता, वर्ण की सत्ता, नस्ल की सत्ता, वंश की सत्ता, वर्ग की सत्ता और सबके ऊपर राज्य-सत्ता। अधिकाधिक सत्ता की प्राप्ति और कब्जे की इच्छा को सत्ता के नियामक धर्म से जोड़ दे सकते हैं। वे कह सकते हैं कि उनका जीवन धर्म के लिए है, तो सत्ता भी धर्म के लिए है। ऐसे में अपराधियों से लेकर राष्ट्र तक धर्म के लिए हो जा सकते हैं। इस रास्ते पर धर्म की कट्टरता/जड़ता तो बढ़ती ही है, कई तरह की क्रूरताएं और नृशंसताएं भी घटित हो सकती हैं।

अब दूसरी स्थिति को देखें। धर्म जीवन के लिए होने पर सत्याचरण और उदारता/रचनात्मकता की संभावना हमेशा बनी रहती है। धर्म अक्सर दर्शन, आध्यात्मिकता, साहित्य, भाषा, कला, नैतिक-मूल्य आदि के सृजन का स्रोत हो सकता है। सभ्यता के शुरू से ही आस्तिक और नास्तिक दोनों तरह की

प्रतिभाओं के सृजन में धार्मिक स्रोत पहचाने जा सकते है। इस रास्ते पर आस्था अंधविश्वास नहीं होती (आलोचनात्मक होती है), और सत्ता-संघर्ष क्रूर व्यापार नहीं बन पाता। क्योंकि उदारता/रचनात्मकता के चलते प्रेम, करुणा, सेवा, सहिष्णुता, सहायता, बंधुत्व, बलिदान, जिजीविषा, सौंदर्य सरीखे मानवीय गुण समाज में सतत और सशक्त उपस्थिति बनाए रखते हैं। धर्म की कसौटी जीवन होने पर धर्म और धर्म वालों की जवाबदेही, और साथ ही साख/सार्थकता बनी रहती है। जीवन होता है, तभी परमात्मा से बिछुड़ने-मिलने के सुख-दुःख की अनुभूति संभव होती है। तभी प्रेम/करुणा/तड़प/दैन्य/वैराग्य आदि विविध भावों में मानव डूबता-उतराता है।

(2)

मानव सभ्यता के मौजूदा दौर में कट्टरता, असहिष्णुता और वैमनस्य की भावना उदारता, सहिष्णुता और आपसी सौहार्द के ऊपर भारी है। ऐसा एकतरफा नहीं है। कट्टरतावादी शक्तियों के प्रतिरोध में सक्रिय शक्तियाँ भी अक्सर कट्टरता, असहिष्णुता और वैमनस्य से परिचालित होती हैं। दुनिया और भारत दोनों स्तरों पर यह परिघटना देखी जा सकती है। आधुनिक सभ्यता के यथार्थवादी दौर में हृदय के प्रेम और समभाव के लिए कोई स्थान नहीं छोड़ा गया है। यह मानते हुए कि वे सब सामंती युग की भाववादी धारणाएं हैं। जबकि मध्यकाल में भक्तिकालीन कवियों ने हृदय के प्रेम और समभाव को जीवन के केंद्र में स्थापित करने का अनूठा और अभूतपूर्व उद्यम किया था। भक्ति-साहित्य में चित्रित प्रेम के बारे में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि वह पांचवां पुरुषार्थ है। भक्तिकालीन कवियों के धार्मिक उद्यम की आधुनिक युग की समस्याओं और चुनौतियों के लिए किसी हद तक सार्थकता हो सकती है। गांधी आधुनिक सभ्यता के बीचों-बीच खड़े होकर यह कर चुके हैं।

क्या यह विचार किया जा सकता है कि मानव-मुक्ति की मध्यकालीन (दार्शनिक, रचनात्मक और साधनागत) उपलब्धियों से कट कर मानव-मुक्ति की आधुनिक अवधारणाएँ और प्रयास सफल नहीं हो सकते? क्या उस बुद्धि से निजात पाने की जरूरत समझी जा सकती है, जो मध्यकालीनता और आधुनिकता के बीच 'वाटर टाइट' विभेद करती है? क्या उस बुद्धि पर भी पुनर्विचार की जरूरत है, जिसके तहत माना जाता है कि विभिन्न धर्मों में पाई जाने वाली उदारता की धारा आधुनिक मनुष्य के लिए किसी काम की नहीं है; बल्कि वह भी सांप्रदायिकता को ही खाद-पानी देती है?

सच्चाई यह है कि उदारता की धारा के बूते आधुनिकता-पूर्व की मानव सभ्यता ने अपने को कट्टरता के आक्रमणों से बचाया है। बल्कि वह पैदा और विकसित ही कट्टरता के बरक्स हुई है, और उसने मानव-मुक्ति के नए क्षितिज उद्घाटित किए हैं। आधुनिक सेकुलरवादी विमर्श में धर्म की उदारतावादी धाराओं को समुचित जगह देने से न केवल संप्रदायवादी ताकतों के प्रभाव को काटा जा सकता है, उपभोक्तावादी-बाजारवादी ताकतों का मुकाबला करने के लिए भी वहाँ से पर्याप्त सामग्री पाई जा सकती है। ऐसा न करने पर धर्म और बाजार के नाम पर चलाया जा रहा कट्टरतावादी अभियान मानव सभ्यता के इतिहास में उपलब्ध उदारता की अंतर्वस्तु को या तो विनष्ट कर देगा, या उसे कट्टरता की झोली में समेट लेगा।

इस्लाम धर्म में उदित और विकसित सूफीवाद धर्म की उदार धारा का एक सशक्त उदाहरण है। सूफीवाद का प्रसार भारत में ग्यारहवीं शताब्दी से बड़े पैमाने पर हुआ। भारत में प्रमुख रूप से चार

सूफी सम्प्रदाय - चिश्तिया, कादिरिया, नक्शबंदिया, सुहारवार्दिया - मिलते है। इनमें चिश्तिया सम्प्रदाय की महत्ता सबसे ज्यादा रही है. इसके संस्थापक मोइनुद्दीन चिश्ती (1141-1236) थे. इनका जन्म सीस्तान में हुआ था और ये 1192-93 के आस-पास भारत आए थे. अजमेर, जहां उनकी मशहूर मज़ार है, में उनका निधन हुआ था। कुछ विद्वान मानते हैं कि मोइनुद्दीन चिश्ती ने ही अपने शिष्यों को सूफी साधना में संगीत शामिल करने की औपचारिक इज़ाज़त दी थी। माना जाता है कि धार्मिक साधना में संगीत के उपयोग की स्वीकृति के पीछे उनका मकसद भारतीयों को इस्लाम की तरफ आकर्षित करना था; क्योंकि भारतीय जन-जीवन संगीत में रचा-बसा रहा है। निजामुद्दीन औलिया (1238-1325) और अमीर खुसरो (1253-1325) जैसे महत्वपूर्ण सूफी संत चिश्तिया सम्प्रदाय से सम्बद्ध रहे हैं. भारत में सूफीवाद की मुस्लिम शासकों के पक्ष में मिशनरी भूमिका की बात की जाती है। सूफी आंदोलन की व्यापक उपस्थिति और सूफी संतों की खानकाहों/मजारों का निर्माण बताता है कि सूफियों को राजाश्रय मिला होगा। इसका यह अर्थ भी है कि मुस्लिम आक्रमणकारियों और शासकों का सूफीवाद से विरोध नहीं था। अलाउद्दीन खिलजी ने बाबा फरीद के शिष्य सूफी संत सीदी मौला (मृत्यु 1292?) की हाथी के पैर नीचे कुचलवा कर हत्या कराई थी, लेकिन उसके कारण पूरी तरह राजनीतिक थे।

लेकिन समय बीतने के साथ भारतीय जनजीवन में सूफियों की गहरी रसाई होती गई। नवीं-दसवीं सदी में भारत आने वाले शुरूआती सूफियों को संवाद स्थापित करने में भाषा की समस्या होती थी। बाद में विशेषकर सूफी कवियों ने अरबी/फारसी लिपि में भारतीय भाषाओं में लिखा/गाया, जिसके चलते उनकी स्वीकृति और लोकप्रियता बढ़ी। भारत में सूफीवाद ने उस समय मुसलामानों के आक्रमणों और सत्ता-स्थापन से उत्पन्न हिंदू-मुस्लिम तनाव को ढीला करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने लोगों के साथ दोस्ताना संबंध बना कर माहौल को शांतिपूर्ण बनाने में मदद की। सूफी फकीर हज़रत मियाँ मीर पांचवे सिख गुरु अर्जुन देव के मित्र थे। उन्होंने हरमंदर साहब की नींव रखी थी। बाबा फरीद के नाम से मशहूर 12वीं-13वीं सदी के सूफी संत हज़रत ख्वाजा फरीदुद्दीन गंज-ए-शक्कर (1173-1273) की वाणी 'गुरुग्रंथ साहिब' में संकलित की गई है। कुल मिला कर सूफीवाद की जैसी सांस्कृतिक-धार्मिक रसाई भारत में हुई, वैसी किसी अन्य देश में नहीं हो पाई।

(3)

सूफीवाद ने भारतीय उपमहाद्वीप में विशाल पैमाने पर फैले भक्ति-आंदोलन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। परमात्मा से एकता और प्रेम पर बल - ये दो तत्व भक्तों और सूफियों में समानता का आधार हैं। भक्तिकालीन दर्शन और काव्य धर्म को जीवन के लिए मान कर चलता है। भक्तिकाल की एक धारा सूफी कवियों और चिंतकों की है, जिसे आचार्य शुक्ल ने प्रेम-मार्गी कहा है। सूफियों के जीवन और दर्शन में प्रेम, अपरिग्रह, बराबरी और बंधुत्व का संदेश निहित है। सूफी रहस्यवादी थे। दुनिया के सभी धर्मों में कमोबेश रहस्यवाद की प्रवृत्ति पाई जाती है। रहस्यवादी प्रवृत्ति धर्म से जुड़ी होकर भी धर्म के संस्थानीकृत रूप के विरोध में पैदा होती है। वह प्रत्येक व्यक्ति की आध्यात्मिक-दार्शनिक जिज्ञासा के स्वाभाविक एवं लोकतांत्रिक अधिकार को बनाए रखने की दृष्टि से जुड़ी होती है। वह धर्म और जीवन में पाखंड और भोगवाद की विरोधी प्रवृत्ति भी है। रहस्यवादी साधक अनुभव करता है कि संपूर्ण जागतिक व्यापार परम सत्ता से पैदा होकर उसी में विलीन होता रहता है। अव्यक्त परम सत्ता, जो प्रकृति के कण-कण में व्याप्त और व्यक्त है, रहस्यवादी उसे जानने की उत्कट जिज्ञासा और व्यग्रता से निरंतर भरा

रहता है। वह मानता है कि परम सत्ता को जागतिक बुद्धि से नहीं, आंतरिक साधना से जाना जा सकता है। आंतरिक साधना में वह सबसे ज्यादा प्रेम की अनुभूति पर बल देता है। इस तरह प्रेम की साधना ही रहस्यवादी साधक की सच्ची साधना है। रहस्यवादी मानते हैं कि प्रेम की साधना का मार्ग आसान नहीं होता। उसमें अपने अहम का पूर्ण विसर्जन करना होता है। इस तरह परमात्मा से जो अंतरंगता स्थापित होती है, उसका प्रसार समस्त प्राणियों तक होता है। उसमें कोई भी अलग या पराया नहीं रह जाता। प्रेम की भावावस्था में स्थित हो संपूर्ण सृष्टि और उसके कर्ता से एकत्व ही रहस्यवादी साधक का चरम लक्ष्य होता है।

रहस्यवादी प्रवृत्ति के संदर्भ में इस्लाम धर्म भी अपवाद नहीं है। माना जाता है कि पैगंबर मोहम्मद (571-632) की कुछेक शिक्षाओं में ही सूफी रहस्यवाद के स्रोत मिल जाते हैं। मसलन, 'जो अपने को जानता है, अपने खुदा को भी जानता है।' एकांत और आत्म-साक्षात्कार का लगातार अभ्यास करने वाले मोहम्मद साहब को पहला सूफी भी माना जाता है। बायजीद बस्तामी (मृत्यु 874) ने सूफीवाद के बारे में कहा है, "इसका बीज-वपन आदम के समय हुआ, नोह की छत्रछाया में बीजों का अंकुरण हुआ, और अब्राहम के समय पल्लवन हुआ। मोजेज़ के समय अंगूर फलित हुए और जीजस के समय पक गए। मोहम्मद साहब के समय शराब तैयार हुई।" एक मान्यता यह भी है कि सूफी रहस्यवाद की जड़ें इस्लाम-पूर्व विद्यमान भारतीय वेदांत, यूनानी दर्शन, बौद्धमत एवं ईसाई रहस्यवाद में मिलती हैं। प्रभावों का होना स्वाभाविक है लेकिन अपने विशिष्ट रूप में सूफीवाद इस्लाम का ही विस्तार है। इस्लाम न होता तो सूफीवाद भी नहीं होता। अलबत्ता सूफीवाद के लगातार एक सशक्त और लोकप्रिय आंदोलन बनते जाने के पीछे तत्कालीन परिस्थितियों की भूमिका से इनकार नहीं किया जा सकता। मोहम्मद साहब के बाद इस्लाम धर्म के सांस्थानिक कर्ता आपसी कलह और सत्ता-संघर्ष का शिकार होते चले गए। वैसी स्थिति में सच्चे साधकों का बाह्याचारों से विमुख होकर अंतर्मुखी होना स्वाभाविक था।

बहरहाल, विधिवत रूप से सूफी रहस्यवाद का उदय अरब में 8वीं शताब्दी में होता है और मिस्र, इराक, ईरान, अफगानिस्तान तक फैलते हुए 12वीं शताब्दी तक उसका व्यवस्थित रूप बन जाता है। इस्लाम धर्म के रहस्वादी ही सूफी कहलाए जो सुन्नी और शिया दोनों सम्प्रदायों में मिलते हैं। वे पैगंबर, 'कुरान' और हदीस के वचनों को मानते हैं, साथ ही अपनी साधना में इस विश्वास से परिचालित होते हैं कि धर्म बाह्याचार का नहीं, आंतरिक अनुभूति का विषय होता है। आमतौर पर अपने सिद्धांतों को वे 'कुरान' और हदीस के हवाले से पुष्ट करते हैं, लेकिन जहाँ तालमेल नहीं बैठ पाता, वहाँ अपनी अलग व्याख्या भी देते हैं। अपने उदार दृष्टिकोण के चलते वे मानते हैं कि कुरान की विभिन्न तरह से व्याख्या की जा सकती है। उन्होंने अपनी अंतःप्रेरणा से कई बार हदीसों की सृष्टि भी की है।

अधिकांशतः सूफी पैगंबर और इस्लाम धर्म के सिद्धांतों के प्रति आस्था प्रकट करते हैं और धार्मिक नियम-कायदों का पालन करते हैं। लेकिन अंतिम कसौटी अपने अंतर की प्रेरणा को ही स्वीकार करते हैं। धर्म में व्याप्त पाखंड और कट्टरता से आजिज आकर कभी-कभार कर्मकांड पर तीखा प्रहार भी करते हैं। ईरान के एक बड़े सूफी कवि अबू सईद इब्न अबी अलखैर (967-1049) का एक इस तरह का कथन है: ''सूर्य के नीचे जितनी मस्जिदें हैं जब तक वे ढह नहीं जातीं, तब तक हमारा धार्मिक अनुष्ठान पूरा नहीं हो सकता और जब तक ईमान और कुफ्र एक नहीं समझे जाते, तब तक कहीं भी सच्चा मुसलमान नहीं दीख सकता।'' सूफी साधकों की इस तरह की विद्रोही उक्तियों का आगे चल कर फारसी

और उर्दू के शायरों पर खासा प्रभाव देखा जा सकता है। लेकिन सूफी साधकों की यह विशेषता है कि वे खंडन-मंडन में न लग कर अपने धार्मिक आचरण में प्रेम और उदारता की प्रतिष्ठा में ही संलग्न रहते हैं। सूफी परमात्मा को प्रेमस्वरूप मानते हुए हृदय के परमात्मा के प्रति प्रेम को ही धार्मिक आचरण की कसौटी मानते हैं। उनके मुताबिक हज करने का महत्व तभी है, जब साधक पग-पग पर हृदय की उदात्तता और पवित्रता अर्जित करता चले; उसके हृदय में परमात्मा और उसकी सृष्टि के प्रति प्रेम का उद्रेक होता चले। सूफी साधक अबू बक्र अल शिबली (861-946) इस विषय में कहते हैं: ''प्रेम प्रज्वलित अग्नि के समान है, जो परम प्रियतम की इच्छा के सिवा हृदय की समस्त वस्तुओं को जला कर खाक कर डालता है।''

साधक के हृदय में जब प्रेम का उदय होता है, तब सांसारिक वस्तुएँ उसके लिए तुच्छ हो जाती हैं, लेकिन संसार के जीवों के लिए उसका हृदय दया और प्रेम से परिपूर्ण रहता है। दूसरों के कष्ट का निवारण करने के लिए वह सब प्रकार से प्रयत्नशील रहता है और उसके लिए सभी प्रकार के कष्टों का स्वागत करता है। छोटे से छोटे से लेकर बड़े से बड़े प्राणी तक उसकी दृष्टि में अपना महत्व रखते हैं। चूँकि सर्वत्र सभी प्राणियों में वे परमात्मा के दर्शन करते हैं, अतः उन्हें सुख पहुँचा कर वे परम सुखी होते हैं। उनके लिए सब प्रकार का त्याग करने के लिए वे प्रस्तुत रहते हैं। बायजीद ने कहा है कि परमात्मा जिससे प्रेम करता है उसे तीन गुणों से विभूषित करता है - ''उसमें समुद्र जैसी उदारता, सूर्य की तरह परदुखकातरता और पृथ्वी की तरह विनम्रता पाई जाती है।'' उदार दृष्टिकोण के चलते कई बार सूफियों को कट्टरपंथियों के कोप का भाजन बनना पड़ा है, और जान से भी हाथ धोना पड़ा है। मशहूर सूफी संत मंसूर अल हल्लाज (858-922) को 'अन अल हक्क' (मैं सत्य यानी खुदा हूँ) कहने के लिए फांसी पर लटका दिया गया था। औरंगजेब ने सरमद कसानी (1590-1661) पर ईशनिंदा (ब्लासफेमी) का आरोप लगा कर सरेआम क़त्ल करवा दिया था। आर्मेनिया में जन्मे सरमद यहूदी धर्म से इस्लाम में आए थे और अपने ढंग से अनोखे सूफी थे। वे दारा शिकोह के धर्म-दोस्त थे और दारा शिकोह की हत्या के बाद भी उनके पक्षधर बने रहे। लिहाज़ा, उन्हें मृत्य-दंड देने के पीछे राजनीतिक कारण भी थे। जून 2016 में पाकिस्तान में मशहूर सूफी गायक अमजद साबरी की सरेआम हत्या कर दी गई।

आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि में आमतौर पर रहस्यवादी दर्शन को सर्जनात्मक नहीं माना जाता। उसे जीवन के यथार्थ को अनदेखा कर एक वायवी संसार में पलायन करने का रास्ता माना जाता है। लेकिन मनुष्य के मन को उदारता, प्रेम और समता की भावभूमि की ओर उन्मुख और प्रेरित करने के लिए रहस्यवादी प्रवृत्ति आधुनिक मनुष्य के काम की हो सकती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सूफियों के बारे में लिखा है: ''हमारे देश के भक्तों और संतों की भांति सूफी साधकों ने भी इसी अंतरतम के प्रेम पर आश्रित भाव-जगत की साधना को अपनाया है। यह साधना जितनी ही मनोरम है उतनी ही गंभीर भी। हमारे देश के अनेक सूफी कवियों ने इस प्रेम साधना को अपने काव्यों का प्रधान स्वर बनाया है।" कह सकते हैं, रहस्यवाद, जिसे अक्सर एक वायवीय चेतना बताया जाता है, का संबंध गहरी जीवनानुभूति से होता है।

एक रोचक तथ्य यह है कि सूफीवाद के विकास में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उनमें सबसे उल्लेखनीय नाम इराक की सूफी संत राबिया बसरी (717-801) का है। माना जाता है कि राबिया ने इश्क हकीकी (दिव्य प्रेम) की अवधारणा प्रस्तुत की जिसके तहत खुदा प्रेमिका और साधक आशिक

है। साधक का इश्क मजाज़ी (दुनियावी प्रेम) से इश्क हकीकी तक पहुँचना सूफीवाद की एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। रहस्यवादी कवि और दार्शनिक इब्न अरबी (1165-1240) ने कहा है कि उनके ऊपर शम्स और फातिमा नाम की दो रहस्यवादी महिलाओं का गहरा असर पड़ा है। उन्होंने बताया है कि वे काफी समय फातिमा के शिष्य बन कर रहे। मशहूर सूफी कवि और धर्मशास्त्री (थिओलोजियन) जलालुद्दीन रूमी (1207-1273) की कई महिला शिष्याओं का उल्लेख मिलता है। उनकी शिष्या फक्र-अन-निसा अपने युग की राबिया कही जाती थी। बायजीद बस्तामी ने सूफी महिला फातिमा निशापुरी (मृत्यु 838) के पवित्र ज्ञान की भूरी-भूरी प्रशंसा की है। उन्होंने कहा है कि जीवन में वे एक ही असली पुरुष और महिला से मिले हैं - वह है फातिमा निशापुरी। फातिमा अपने पति के साथ बायजीद से मिलने जाती है और पर्दा हटा कर धर्म-चर्चा करती हैं। मिस्र के मशहूर सूफी धुन-नू-अल-मिस्री (796-859) की मक्का जाते समय फातिमा निशापुरी से मुलाकात होती है। उनसे जब पूछा गया कि सूफियों में सबसे बड़ा कौन है, तो उन्होंने अपनी गुरु फातिमा निशापुरी का नाम लिया। भारत में शाहजहाँ की बड़ी बेटी जहाँआरा बेगम (1614-1681) की गणना सूफी विदुषियों में की जाती है। उन्हें दारा शिकोह (1615-1659) ने सूफीमत में अनुरक्त किया था। सूफी इस्लाम में स्त्रियों की सहभागिता उसके उदार स्वरूप को और ज्यादा विस्तार देती है।

(4)

सूफी दार्शनिकों और साधकों के अलावा सूफी साहित्यकारों की भी कट्टरता के बरक्स उदारता के विस्तार में अहम भूमिका रही है। यूँ तो दुनिया का ज्यादातर श्रेष्ठ साहित्य मनुष्य के हृदय में निहित प्रेम, उदारता और परदुखकातरता की अनंत संभावनाओं के प्रकाशन का ही उद्यम है, लेकिन सूफियों का प्रेम- काव्य इस मायने में अपनी अलग महत्ता और सार्थकता रखता है। अपनी लोक-संवेदना के चलते वह आम जीवन के ज्यादा नजदीक आता है। सूफी प्रेम-काव्यों में लोक-भाषा में लोक-कथाओं को आधार बना कर लोकरंजन किया गया है। मलिक मुहम्मद जायसी (1477-1542) का 'पदमावत' सूफी प्रेम-साधाना का एक अनुपम काव्य है। 'पदमावत' में एक प्रसंग काबिलेगौर है। चित्तौड़ गढ़ के व्यापारियों का एक काफिला व्यापार करने के लिए सिंहलद्वीप की यात्रा पर निकलता है। उनके साथ थोड़ा-बहुत कर्ज लेकर एक गरीब ब्राह्मण भी व्यापार की लालसा में चल देता है। जायसी ने व्यापार स्थल पर लगे बाजार की विशालता और भव्यता का चित्रण किया है जहाँ लाखों-करोड़ों में वस्तुएँ बिकती हैं।

व्यापारी अपना-अपना व्यापार करते हैं लेकिन थोड़ी-सी पूँजी लेकर आया ब्राह्मण उस बाजार में कुछ भी खरीद नहीं पाता। व्यापारी लौटने लगते हैं। ब्राह्मण निराशा से भर जाता है। तभी बाजार के एक कोने में उसकी नजर पिंजड़े में बंद एक तोते पर पड़ती है जिसे व्याध वहाँ बेचने के लिए ले आया है। ब्राह्मण तोते से वार्तालाप करता है। उससे पूछता है कि वह गुणी पंडित है या केवल छूँछा (खोखला) है। अगर पंडित है तो ज्ञान की बात बता। तोता पीड़ा से भर कर कहता है कि 'हे ब्राह्मण मैं तभी तक गुणी और ज्ञानी था जब तक इस पिंजड़े में कैद नहीं हुआ था। अब तो मैं पिंजड़े में कैद हूँ और बाजार में बिकने के लिए चढ़ा दिया गया हूँ। ऐसी स्थिति में अपना सारा ज्ञान भूल गया हूँ।' जायसी तोते की मर्मांतक वेदना को इस तरह व्यक्त करते हैं: "पंडित होई सो हाट न चढ़ा। चहउँ बिकाई भूली गा पढ़ा।।" अर्थात जो ज्ञानी होता है वह बाजार में (बिकने के लिए) नहीं चढ़ता। मैं तो बिक रहा हूँ/मुझे बेचा जा रहा है, लिहाजा सब पढ़ाई भूल गया हूँ।

मानव सभ्यता में विचार और बाजार का द्वंद्व हमेशा से चला आ रहा है। इस प्रसंग में जायसी ने मध्यकालीन बुद्धिजीवी की बाजार के हाथों बिकने की वेदना को अभिव्यक्ति दी है। वे बताते हैं कि पंडित, ज्ञानी या बुद्धिजीवी वही है, जो बाजार की ताकत/गिरफ्त से स्वतंत्र है। आज हम देखते हैं कि दुनिया का ज्यादातर बौद्धिक विमर्श बाजारवाद की ही सेवा में लगा हुआ है और बुद्धिजीवियों को इसकी कोई पीड़ा नहीं है। बुद्धिजीवियों की मार्फत दुनिया पर अपना वर्चस्व जमाने वाले बाजारवाद के प्रतिरोध की चेतना सूफी वाड़मय में मिलती है।

अंतिम बात : इस्लाम पर मध्यकाल से 'राजनीतिक' होने का ठप्पा लगा हुआ है। राजनीतिक इस्लाम (पोलिटिकल इस्लाम) की स्थापना के लिए आतंकी कार्रवाइयों में सलंग्न अलकायदा और इस्लामिक स्टेट जैसे संगठन सूफीवाद के कट्टर विरोधी हैं। पूरी दुनिया में इस समय लोगों की चेतना में कट्टर इस्लाम की छवि तैरती है। सूफीवाद पराभव की स्थिति में है। दक्षिण एशिया में सूफी गायकी के रूप में जो सामने आता है, उस पर बाज़ारवाद के तकाजों का गहरा असर है। चकाचौंध करने वाली रोशनियों और तरह-तरह के वाद्ययंत्रों के आर्केस्ट्रा दिल की गहराई से निकलने वाले स्वरों को अक्सर कृत्रिम बना देते हैं। अगर सूफीवाद के प्रति समग्रता में गंभीर रुख अपनाया जाए, तो इस्लाम की कट्टरतावादी छवि को तोड़ने में सहायता मिल सकती है।

जुलाई 2020